भील नायकों की ऐतिहासिक छवियाँ: राजस्थानी ख्यातों और लोकगाथाओं के सन्दर्भ में

भूपेंद्र पेडवा[1], डॉ. सोन कंवर हाड़ा[2]

[1]शोधार्थी, इतिहास, शोध केंद्र – करियर पॉइंट यूनिवर्सिटी, कोटा, राजस्थान

[2]शोध पर्यवेक्षक, प्रोफेसर, इतिहास, करियर पॉइंट यूनिवर्सिटी, कोटा, राजस्थान

***सारांश*—भील नायकों की छवियाँ इतिहास के उन पन्नों से जुड़ी हैं जो आम तौर पर कम पढ़े गए हैं। ख्यातों में वे एक सीमित भूमिका में दिखते हैं, लेकिन लोक गाथाएँ उन्हें जनजीवन का नायक बनाकर सामने लाती हैं। इन नायकों का संबंध युद्ध या सत्ता के साथ-साथ समाज, प्रकृति और संस्कृति से भी रहा है। उनके भीतर ऐसी समझ और संवेदनशीलता थी, जो उन्हें सिर्फ योद्धा नहीं, एक जिम्मेदार साथी बनाती है। स्त्रियाँ उन्हें रक्षक से ज़्यादा एक विचारशील पुरुष के रूप में याद करती हैं। उनकी कहानियाँ जंगल, नदी और पहाड़ से गहराई से जुड़ी हुई हैं। उन्होंने ज़मीन को सिर्फ साधन नहीं, जीवन का आधार माना। सत्ता और जातीय भेदभाव के बीच वे अपने स्वाभिमान के साथ टिके रहे। लोक स्मृति ने उन्हें सँजोया, जबकि इतिहास की किताबें अक्सर चुप रहीं। आज जब पहचान और न्याय की बात हो रही है, तब ये चरित्र नई रोशनी देते हैं। उन्होंने न समाज से मुँह मोड़ा, न समय से। उनका जीवन आज भी सीख देने वाला है। इसी सोच को समझने और साझा करने की यह पूरी कोशिश रही है।**

***मुख्य शब्द*—भील नायक, लोक स्मृति, ख्यात साहित्य, जनजातीय इतिहास, सांस्कृतिक प्रतिरोध, लोक गाथाएँ, ऐतिहासिक छवियाँ, लोक नायक, जनजीवन**

I. प्रस्तावना

राजस्थान का ऐतिहासिक परिदृश्य केवल राजाओं और युद्धों तक सीमित नहीं रहा है। क्योंकि इसमें अनेक जनजातीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी भी रही है। इनमें भील समुदाय की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय रही है, जिनकी उपस्थिति न केवल सीमांत क्षेत्रों की रक्षा में, साथ ही सांस्कृतिक संरचना में भी स्पष्ट दिखाई देती है (नवप्रदेश डेस्क, 2023)। परंतु यह दुर्भाग्य पूर्ण है कि राज्य-प्रायोजित इतिहास लेखन में भीलों की ऐतिहासिक छवियों को या तो हाशिये पर रखा गया या उन्हें केवल विद्रोही, डकैत अथवा 'अन्य' के रूप में चित्रित किया गया। यह विमर्श, जो सत्ता और जातीय विमर्श के मध्य स्थित है, आधुनिक इतिहास लेखन के लिए चुनौती बन चुका है। लोक परंपराओं और ख्यातों में भील नायकों की जो छवियाँ मिलती हैं, वे केवल वीरता तक सीमित नहीं हैं। क्योंकि उनके भीतर सामाजिक नैतिकता, पर्यावरणीय चेतना और सांस्कृतिक प्रतिरोध के गहरे बोध निहित हैं (RajRAS, 2019)। इन्हीं छवियों को नए परिप्रेक्ष्य में समझना इस शोध का मूल उद्देश्य है।

भील नायकों को लेकर जो ऐतिहासिक और लोक स्मृतियाँ जीवित हैं, वे मुख्यधारा की ऐतिहासिक दृष्टि

को चुनौती देती हैं। ख्यात साहित्य में भले ही उनके योगदान को सीमित रूप से अंकित किया गया हो, लेकिन लोकगाथाओं और जनश्रुतियों में उनकी उपस्थिति जीवंत और प्रेरणादायक रही है (कृष्ण मूर्ति त्रिपाठी, 2023)। ये गाथाएँ न केवल प्रतिरोध की कहानियाँ हैं, साथ ही वे समुदाय की सामाजिक चेतना और आंतरिक न्याय बोध की भी अभिव्यक्ति करती हैं। आधुनिक शोध-पद्धतियाँ जब इन गाथाओं को पुनर्पाठ के लिए अपनाती हैं, तब यह स्पष्ट होता है कि भील नायक किसी 'वर्ग-विरोधी योद्धा' मात्र न होकर वे भू-आधारित संघर्षों, सांस्कृतिक समानता और जातीय सम्मान के वाहक भी थे। इस दृष्टिकोण से उनका अध्ययन इतिहास के साथ-साथ वर्तमान सामाजिक चेतना का भी अनिवार्य हिस्सा बन जाता है।

यह अध्ययन केवल इतिहास के पुनर्लेखन की प्रक्रिया नहीं है। क्योंकि यह सामाजिक स्मृति, स्त्री-दृष्टि, पर्यावरणीय चेतना और जातीय न्याय के प्रश्नों को समकालीन संदर्भ में पुनः उठाने का प्रयास है (हेमलता गमेती, 2024)। जब हम ख्यातों और लोकगाथाओं को एक साथ रखकर पढ़ते हैं, तब इतिहास केवल शासकों की गाथा नहीं रह जाता, वह लोक-नायकों, उनके दुःख-संघर्षों और मूल्यबोध की परतों को भी उजागर करता है। इस शोध में प्रयुक्त पद्धति केवल साहित्यिक पाठों के तुलनात्मक विश्लेषण तक सीमित नहीं है। क्योंकि उसमें सामाजिक-सांस्कृतिक संकेतों का गहन विवेचन भी सम्मिलित है। यह प्रस्तावना इस विश्लेषण की दृष्टि को स्पष्ट करने का प्रयास है – कि भील नायकों को केवल इतिहास के एक अध्याय के रूप में देखने की बजाय वर्तमान सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक विविधता के प्रतीक रूप में देखा जाना चाहिए (Sahityasetu Editorial Team, 2013)। यह कार्य उन जनवृतांतों को स्वर देने का प्रयास है जिन्हें इतिहास ने अब तक मौन रखा है।

II. साहित्य समीक्षा

किसी भी शोध कार्य की ठोस नींव उसके पहले से हुए अध्ययन और उपलब्ध साहित्यिक सामग्री की सम्यक् समझ पर आधारित होती है। भील नायकों की ऐतिहासिक छवियों से जुड़ी सामग्री विविध रूपों में उपलब्ध है – जैसे ख्यात साहित्य, ऐतिहासिक दस्तावेज, लोक गाथाएँ, और जनजातीय अध्ययन। इन स्रोतों के माध्यम से यह जाना जा सकता है कि किस तरह विभिन्न लेखकों, इतिहासकारों और परंपराओं ने भील नायकों को समझा और प्रस्तुत किया। इस समीक्षा का उद्देश्य इन्हीं स्रोतों का विश्लेषण करना है ताकि शोध की दिशा को सुदृढ़ आधार मिल सके। इस चिंतन में उन प्रमुख ग्रंथों और लेखन प्रवृत्तियों की चर्चा की गई है जिनसे शोध विषय का वैचारिक ढांचा निर्मित होता है।

1.) राजस्थानी ख्यातों में वर्णित प्रमुख भील चरित्रों पर आधारित अध्ययन

श्रीराम शर्मा (1930) की कृति "महाराणा प्रताप" यह उद्घाटित करती है कि भील समुदाय मेवाड़ के संघर्ष पूर्ण इतिहास में केवल सहयोगी नहीं, साथ में संरक्षक रूप में चित्रित होते है। उनके अनुसार, जब राणा प्रताप मुग़ल आक्रमणों से बचते हुए पहाड़ों में पहुँचे, तब कोजिया और बाना जैसे भीलों ने उन्हें केवल आश्रय ही नहीं दिया, अपितु भोजन, सुरक्षा और मार्गदर्शन भी उपलब्ध कराया। 'राज प्रबंध ख्यात' में कोजिया द्वारा राणा के लिए अन्न और जल की निरंतर व्यवस्था का वर्णन केवल सेवाभाव को ही नहीं साथ में रणनीतिक संलग्नता को दर्शाता है। यह परिदृश्य स्पष्ट करता है कि ख्यात-ग्रंथों में भील कोई परिधीय पात्र नहीं, अपितु सत्ता संरचना में समकालीन सक्रियता के वाहक थे।

उनकी भूमिका ऐतिहासिक घटनाओं के निष्क्रिय दर्शक की न होकर निर्णायक सहभागिता की रही है।

नर सिंह परदेसी-बघेल (2021) के विश्लेषण "महाराणा प्रताप: समग्र मूल्यांकन" में यह बिंदु उभरकर सामने आता है कि ख्यातों में वर्णित भील चरित्र केवल साहसी नहीं, सांस्कृतिक प्रतिरोध के प्रतीक भी हैं। वे बताते हैं कि हल्दीघाटी युद्ध के उपरांत जब राणा प्रताप पहाड़ी अंचलों में पुनर्गठन कर रहे थे, तब भीलों की भूमिका सीमित नहीं रही। 'राज विनोद ख्यात' और अन्य प्राचीन स्रोतों में यह उल्लिखित है कि बारिया और कोजिया जैसे भीलों ने राणा की गुप्तचर व्यवस्था, मार्गदर्शन और सैन्य सहायता को सुनियोजित रूप दिया। परदेसी-बघेल इस सहभागिता को केवल ऐतिहासिक तथ्य की बजाय सांस्कृतिक प्रतिरोध की सशक्त परंपरा के रूप में देखे जाने की आवश्यकता पर बल देते हैं। इन चरित्रों के माध्यम से यह भी प्रमाणित होता है कि राजस्थानी जन-परंपरा में भीलों की छवि सहायक के साथ-साथ नायकत्व की है।

धरमपाल बरण्डा (2022) की समीक्षा "महाराणा प्रताप कालीन जनजातीय संस्कृति, कला एवं साहित्य" में यह दृष्टिकोण मिलता है कि ख्यातों में वर्णित भील पात्र – विशेषतः कोजिया, बारिया और बाना – केवल ऐतिहासिक संदर्भों के प्रतिनिधि न होकर समूचे जनजातीय चेतना के प्रतीक हैं। बरण्डा के अनुसार, राजस्थानी ख्यातों में जिन प्रसंगों में इन पात्रों का उल्लेख आता है, वहाँ वे मात्र सहयोगी या निम्न जातीय प्रतिनिधि नहीं, अपितु युद्धनीति, कूटनीति और सांस्कृतिक स्थिरता के वाहक के रूप में स्थापित होते हैं। उनका भोजन उपलब्ध कराना, पहरेदारी करना, मार्ग दिखाना – ये सब कार्य सामूहिक अस्तित्व और विश्वास की सामाजिक संरचना को दर्शाते हैं। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि भील पात्रों की उपस्थिति राजपूत-केन्द्रित ख्यातों में भी शक्ति, निष्ठा और सांस्कृतिक गहराई के साथ अंकित की गई है।

2.) लोकगाथाओं में भील नायकों की सांस्कृतिक एवं वीर छवियाँ

सुशील कुमार (2021) का विश्लेषण "हल्दीघाटी का योद्धा" यह बताता है कि लोकगाथाओं में भील नायकों की छवि केवल युद्ध क्षेत्र तक सीमित न रहकर वे सामुदायिक नेतृत्व, आत्म-सम्मान और सांस्कृतिक मूल्यबोध के वाहक भी रहे हैं। 'झामरिया', 'राणा का कोजिया' जैसी लोकगाथाओं में कोजिया या बाना जैसे पात्रों को केवल सहयोगी योद्धा न मानकर एक ऐसे जननायक की तरह प्रस्तुत किया गया है, जो जंगलों, पर्वतों और सीमांत क्षेत्रों की रक्षा करते हुए अपनी जनजातीय पहचान को अक्षुण्ण बनाए रखते हैं। इन गाथाओं में उनकी वीरता में आत्मबल और स्वाभिमान के साथ-साथ प्रकृति के साथ उनका संतुलन भी परिलक्षित होता है। इस प्रकार, भील नायकों की वीरता कोई एक क्षणिक रणकौशल की बजाय दीर्घकालिक सांस्कृतिक परंपरा का बिंब बनती है, जो राजस्थान के आदिवासी इतिहास का अविभाज्य हिस्सा है।

सावित्री सिंह परिहार एवं ज्योति चौबीसा (2025) की कृति "महाराणा प्रताप का गौरवशाली इतिहास" में यह स्पष्ट किया गया है कि लोकगाथाओं में नायकों की छवियाँ केवल उनके कर्मों से नहीं, उनके चारित्रिक आदर्शों से भी निर्मित होती हैं। 'बानासुर की वंशगाथा' जैसी कहानियाँ यह संकेत देती हैं कि भील नायक अस्त्रधारी के साथ-साथ लोक समाज में न्यायप्रिय, मर्यादा-पालक और जन कल्याणकारी पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इन कथाओं में दिखाया गया है कि वे संकट के समय न केवल रक्षार्थ खड़े होते हैं, साथ ही निर्णय लेने में नैतिक विवेक और सामाजिक सहमति को प्रमुखता देते हैं। गाथाओं का मौखिक स्वरूप भी

इन नायकों की छवि को जनमानस में स्थायी करता है। ये गाथाएँ यह भी दर्शाती हैं कि वीरता की परिभाषा केवल शस्त्र संचालन में न होकर लोक जीवन की संरचना और रक्षा करने में है – जो कि भील नायकों की सांस्कृतिक छवि को और अधिक व्यापक बनाती है।

कपिल कुमार मीणा (2025) का शोध "महाराणा प्रताप की ऐतिहासिक स्वतंत्रता संग्राम गाथा" यह उद्घाटित करता है कि दक्षिणी राजस्थान की लोकगाथाओं में भील नायकों की छवि केवल ऐतिहासिक प्रसंगों से नहीं, साथ ही आत्मनिर्भरता और जन-प्रतिरोध के जीवंत प्रतीकों से जुड़ी है। विशेषकर 'झमकली' और 'झूली बाई' जैसे चरित्रों की स्त्री-आधारित लोककथाएँ दर्शाती हैं कि भील वीरता एकल नायकों की नहीं, समष्टिगत जन संघर्ष की अभिव्यक्ति है। मीणा बताते हैं कि इन लोकगाथाओं में वीरता का मापन केवल विजय से नहीं, सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा और आत्मबल के प्रदर्शन से होता है। इस प्रकार, इन गाथाओं में भील नायक परंपरा, प्रकृति और प्रतिरोध – तीनों का समन्वय करते हुए एक ऐसी छवि निर्मित करते हैं, जो शौर्य के साथ-साथ सांस्कृतिक मूल्य-व्यवस्था की भी धुरी बन जाती है।

3.) जनजातीय इतिहास लेखन और लोक परंपरा में अन्तर्विरोध व समरसता

गोपीनाथ शर्मा (1927) की कृति "राजपूताना का इतिहास" का अनुचिंतन यह दर्शाता है कि औपचारिक इतिहास लेखन ने जनजातीय योगदान को प्रायः परिधि में रखकर चित्रित किया है। विशेषकर मेवाड़ और आसपास के अंचलों में भीलों की भूमिका को ख्यातों और वंशावली साहित्य में कभी स्वीकृत तो कभी गौण कर दिया गया। शर्मा के अनुसार, शासकीय दस्तावेजों और दरबारी इतिहास में भीलों की भूमिका केवल असंगठित समूहों तक सीमित की गई, जबकि यथार्थ में वे सामूहिक रक्षा, आहार आपूर्ति और युद्ध संरचना के आधार स्तंभ थे। इस ऐतिहासिक प्रवृत्ति में एक गहरा अन्तर्विरोध यह रहा कि जहाँ ख्यातें वीरता का वर्णन करती हैं, वहीं लोक गाथाएँ इन्हीं पात्रों को नायकत्व प्रदान करती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि राजकीय इतिहास और जनजातीय स्मृति के बीच एक सतत टकराव भी रहा और साथ ही अनदेखे समन्वय की संभावनाएँ भी।

अबुल फ़ज़ल (1597) के ऐतिहासिक ग्रंथ "अकबरनामा" की समीक्षा से यह प्रतीत होता है कि मुग़ल दृष्टिकोण से भील समुदाय को हमेशा से असभ्य, विद्रोही और कठिन भूगोल से जुड़ा हुआ समझा गया। अबुल फ़ज़ल ने उन्हें ऐसे समूह के रूप में दर्ज किया है जो शासकीय नियंत्रण से बाहर थे, किन्तु साथ ही उनकी भूमिका को सामरिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण भी माना है। इस द्वैध दृष्टिकोण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इतिहास लेखन में जनजातीय समुदायों के प्रति जो दृष्टि अपनाई गई वह केवल सांस्कृतिक दूरी का परिणाम होने की बजाय सत्ता के केंद्रीकरण की रणनीति भी थी। जब दूसरी ओर लोककथाओं में यही समुदाय नायकत्व, पराक्रम और सामूहिक नैतिकता के संवाहक के रूप में उभरते हैं, तब यह विरोधाभास और भी गहरा प्रतीत होता है। यही वह स्थान है जहाँ समरसता की संभावनाएँ उभरती हैं – जहाँ लोक स्मृति शासकीय दृष्टिकोण को चुनौती देती है।

कृष्ण मूर्ति त्रिपाठी (2023) का विश्लेषण "भारत के इतिहास में जनजातीय समाज का अद्वितीय योगदान" इस बात को प्रमुखता से रेखांकित करता है कि इतिहास लेखन में यदि केवल शिलालेख, युद्ध और राजकीय संवाद को ही प्रमाण माना जाए, तो जनजातीय परंपराओं की समूची स्मृति असंदर्भित रह जाती है। वे बताते हैं कि लोक परंपरा – चाहे वह गीत हो, नृत्य

हो, या किंवदंतियाँ – इतिहास का एक वैकल्पिक दस्तावेज बनती हैं। इस दृष्टि से देखें तो भील नायकों की छवियाँ केवल वीरता या प्रतिरोध तक सीमित नहीं रहतीं हैं। क्योंकि वे एक ऐसे सांस्कृतिक आत्मबोध का निर्माण करती हैं जो समरसता और स्वीकार्यता का पक्षधर होता है। त्रिपाठी का यह निष्कर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण है कि लोक परंपरा, इतिहास लेखन के एकांगी दृष्टिकोण को पूरक बनाने की बजाय उसका संशोधन करती है। यह प्रक्रिया अन्तर्विरोधों को उजागर करते हुए भी एक गहरे मानवीय समन्वय की नींव रखती है।

III. भील नायकों की जनजातीय पहचान: सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

राजस्थान की सामाजिक संरचना में भील समुदाय एक आदिकालीन और सशक्त जनसमूह के रूप में उपस्थित रहा है, जिसकी पहचान केवल वनों और पर्वतीय अंचलों तक सीमित नहीं रही। क्योंकि उसने सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में भी स्वतंत्र स्थान प्राप्त किया। ख्यात-ग्रंथों में कोजिया जैसे पात्रों के माध्यम से यह संकेत मिलता है कि भीलों ने न केवल राजनीतिक संकट में सहायता की, साथ ही एक सांस्कृतिक मूल्यों से युक्त जीवन दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया (धरमपाल बरण्डा, 2022)। उनके जीवन में प्रकृति, पशु और मानव के बीच एक सामंजस्य देखने को मिलता है, जो राजस्थानी समाज की विविधता में समरसता का प्रतीक है। यही कारण है कि मेवाड़ अंचल में उनकी उपस्थिति केवल एक जातीय समूह की न होकर, एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में स्वीकृत हुई (गोपीनाथ शर्मा, 1927)। इनका परिधान, भाषा, भोजन और धार्मिक मान्यताएँ ऐसी विशिष्टता प्रस्तुत करती हैं जो राजस्थानी जनपद की बहुलतावादी चेतना को समृद्ध करती हैं।

भील समुदाय की पहचान केवल उनकी सामाजिक रीतियों और जीवनशैली में नहीं, अपितु उनकी सांस्कृतिक धारणाओं और लोक व्यवहार में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। लोकगाथाओं में बाना और झमकली जैसे नायकों की कथाएँ दर्शाती हैं कि वे युद्ध कौशल में निपुण होने के साथ-साथ सामुदायिक मूल्यों और नैतिक संहिताओं के भी वाहक थे (कपिल कुमार मीणा, 2025)। ये पात्र ऐसे जीवन-संदर्भों को उद्घाटित करते हैं जहाँ व्यक्तिगत नायकत्व, सामाजिक न्याय और सामूहिक उत्तरदायित्व का अद्भुत समन्वय मिलता है। इनके लोकगीतों, नृत्य शैलियों और पारंपरिक उत्सवों में यह स्पष्ट झलकता है कि उनकी सांस्कृतिक अस्मिता राजकीय प्रभावों से स्वतंत्र, परंतु सामाजिक रूप से संवादात्मक रही है (हेमलता गमेती, 2024)। इस प्रकार, भील जनजाति का सांस्कृतिक अवदान किसी अलग-थलग समाज का साक्ष्य होने की बजाय राजस्थान की विविध लोक संस्कृतियों में सक्रिय भागीदारी का साक्ष्य है।

भील जनजाति की सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान को समझने के लिए यदि हम आधुनिक आँकड़ों पर दृष्टिपात करें, तो स्पष्ट होता है कि आज भी उनकी जनसंख्या का एक बड़ा भाग पारंपरिक मूल्य संरचनाओं और आस्थाओं से जुड़ा हुआ है।

नीचे दी गई तालिका में राजस्थान के तीन जिलों में भील समुदाय की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों की उपस्थिति का तुलनात्मक विवरण दिया गया है:

तालिका 01: भील समुदाय की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों की उपस्थिति			
जिला	लोकनृत्य की सक्रियता	पारंपरिक त्योहार (गैर-राजकीय)	स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा

डूंगरपुर	उच्च	प्रमुख	माताजी, देवली
बांसवाड़ा	मध्यम	सक्रिय	गरासिया देव, भेरुजी
उदयपुर	उच्च	अत्यधिक	काली, भील देव

[स्रोत: राजस्थान ज्ञान, (2020)]

यह तालिका दर्शाती है कि राजस्थान के विभिन्न अंचलों में भील समुदाय की सांस्कृतिक जड़ें गहराई से विद्यमान हैं, और उनकी पहचान केवल सामाजिक जीवन से नहीं, साथ में स्थानीय देव परंपराओं और सांस्कृतिक आचरणों से भी निर्मित होती है। इन सभी स्थलों पर भील समुदाय की सांस्कृतिक संलग्नता और सामाजिक गतिशीलता एक जीवंत परंपरा को संरक्षित रखती है (राजस्थान ज्ञान, 2020)। उनके जीवन में आधुनिकता के आगमन के साथ-साथ परंपरा का संतुलन यह स्पष्ट करता है कि भील नायक न केवल ऐतिहासिक चरित्र हैं, साथ ही आज भी सांस्कृतिक जीवंतता के प्रतिनिधि बने हुए हैं (शरण, भरण, 2022)।

IV. राजस्थानी ख्यातों में वर्णित सत्ता, जातीय टकराव और भील उपस्थिति

राजस्थानी ख्यातों में जब सत्ता की संरचना और राजनीतिक वर्चस्व की घटनाएँ दर्ज की जाती हैं, तो उनमें भील समुदाय की उपस्थिति अक्सर एक अस्पष्ट किन्तु निर्णायक भूमिका में दिखती है। कोजिया, बारिया या बाना – जैसे पात्र, जो ख्यातों में हाशिये की उपस्थिति रखते हैं, वास्तव में सत्ता संघर्षों के भीतर गहराई से संलग्न थे। 'मुन्तखब-उत-तवारीख' जैसे फारसी स्रोतों में यह संकेत मिलता है कि भील जातियाँ न केवल युद्ध के सहायक थे, साथ में कई बार सत्ता-स्थापन के औजार भी बने (अब्दुल कादिर अलबदायुनी, 1593)। इसी प्रकार 'राज प्रबंध ख्यात' में कोजिया की निरंतर उपस्थिति यह दर्शाती है कि भील समुदाय को सत्ता की संधि-प्रक्रियाओं और गुप्तचर रणनीतियों में महत्वपूर्ण माना गया (अमितेश कुमार, 2018)। इन दस्तावेजों में उनकी भूमिका किसी सामंती नियंत्रण से संचालित दिखने की बजाय स्वतंत्र भागीदारी का द्योतक है, जो परंपरागत सत्ता विमर्श को चुनौती देती है।

जातीय टकराव का चित्रण ख्यातों में अक्सर परोक्ष और सांकेतिक रूप में होता है, जहाँ भील पात्रों को राज्य व्यवस्था से बाहर की 'प्राकृतिक शक्तियाँ' मानकर प्रस्तुत किया गया है। परंतु जब इन्हीं कथाओं को गहराई से पढ़ा जाता है, तो स्पष्ट होता है कि ये 'प्राकृतिक शक्तियाँ' दरअसल सामाजिक व्यवस्था के ऐसे तत्व थे जो राजपूत सत्ता के एकधर्मी दृष्टिकोण को चुनौती देते थे (Sahityasetu Editorial Team, 2013)। 'वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप' जैसे ग्रंथ में भीलों को जन शक्ति और प्रतिरोध की एक संगठित चेतना के रूप में देखा गया है, जो जातीय हीनता के आरोपों के विरुद्ध जन संघर्ष का प्रतीक बनते हैं (गोपीनाथ शर्मा, 1928)। इस प्रक्रिया में भील उपस्थिति केवल युद्ध सहायक के रूप में उभरने की बजाय वैकल्पिक सत्ता अवधारणाओं को जन्म देने वाली शक्ति के रूप में उभरती है, जो इतिहास के जातीय ढाँचे में एक नई व्याख्या प्रस्तुत करती है।

भीलों की उपस्थिति ख्यातों में सत्ता के 'दृष्टिगोचर केंद्र' और 'हाशिये के समाज' के बीच की दूरी को मिटाती प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए, हल्दीघाटी युद्ध के वर्णनों में जहाँ राजपूत वीरों की गाथा मुखरित होती है, वहीं भील सहयोगियों की भूमिकाएँ सीमित वर्णित होती हैं, परन्तु उनके क्रियाकलाप पूरे घटनाक्रम की सफलता में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं (Navpradesh Desk, 2023)। इससे यह स्पष्ट होता है कि भील नायक सैन्य परिधि का हिस्सा होने की बजाय सत्ता-संरचना के भीतर

सक्रिय, स्वायत्त और रणनीतिक योगदानकर्ता थे। राजस्थान अखबार द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण में भी यह उभरकर सामने आता है कि राजस्थान की सत्ता-व्यवस्थाओं में आदिवासी उपस्थिति को या तो सहायक रूप में दर्ज किया गया या हाशिए पर धकेल दिया गया (RajRAS, 2019)। जबकि यथार्थ यह रहा कि भील नायक न केवल सत्ता को प्रभावित करते रहे, साथ में जातीय टकरावों को सामुदायिक साझेदारी में रूपांतरित करने की शक्ति भी रखते थे।

V. लोकगाथाओं में स्त्री-दृष्टि से भील नायकों की छवि

लोकगाथाओं में स्त्रियों की दृष्टि से भील नायकों की छवि केवल पराक्रम तक सीमित न रहकर वह करुणा, सामूहिकता और संरक्षण जैसे स्त्री-सम्वेद्य मूल्यों के साथ जुड़ती है। 'झूली बाई' और 'झमकली' जैसी गाथाओं में नायक की भूमिका रक्षक के रूप में न होकर सांस्कृतिक उत्तरदायित्व निभाने वाले सहयोगी के रूप में उभरती है। इन लोकगाथाओं में स्त्रियाँ जब नायकों का उल्लेख करती हैं, तो वे केवल रणभूमि की वीरता नहीं, उनके निर्णय लेने की नैतिकता और संवेदनशीलता पर भी ज़ोर देती हैं (सावित्री सिंह परिहार, 2025)। स्त्री-दृष्टि में भील नायक वह होता है जो अपने समाज की स्त्रियों को युद्ध में ढाल मानने की बजाय विचार में सहभागिनी मानता है। यही कारण है कि लोकगीतों में भील पुरुषों का चरित्र मातृत्व और जन समर्पण की प्रतीकात्मक भाषा में वर्णित होता है (हेमलता गमेती, 2024)।

राजस्थानी लोक परंपरा में ऐसी कई कथाएँ प्रचलित हैं, जिनमें स्त्री पात्र स्वयं भील नायकों की संघर्षशीलता की साक्षी रहती हैं और उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करती हैं। 'झामरिया' और 'बाना की बींदणी' जैसे किस्सों में भील नायक केवल योद्धा नहीं, साथ में घर-परिवार, कुटुम्ब और गाँव की मर्यादा के संरक्षक के रूप में सामने आते हैं (भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, 2022)। स्त्रियाँ उन्हें अपने गीतों में "धरती-सा धीर" और "छाँव-सा छत्र" कहकर संबोधित करती हैं, जो एक गहरी सामाजिक स्वीकृति का संकेत है। इन लोक अभिव्यक्तियों में नायकत्व पुरुषत्व की आक्रामक परिभाषा से मुक्त होकर एक संवेदनशील, विचारशील और परामर्शदात्री भूमिका में आता है। यह स्त्री दृष्टिकोण भील नायकों को एक ऐसे सामाजिक नेतृत्व से जोड़ता है जो केवल वीरता को ही नहीं साथ में न्याय और सहअस्तित्व को भी केंद्र में रखता है (राजस्थान ज्ञान, 2020)।

नीचे प्रस्तुत तालिका में कुछ प्रमुख लोकगाथाओं में स्त्री दृष्टिकोण से उभरने वाले भील नायकों के चित्रण को दर्शाया गया है:

तालिका 02: प्रमुख लोकगाथाओं में स्त्री दृष्टिकोण से उबरते नायक		
लोकगाथा का नाम	स्त्री पात्र	नायक की छवि (स्त्री-दृष्टि से)
झामरिया	झामरिया	न्यायप्रिय, आत्मबल से युक्त
बाना री बींदणी	बाना की पत्नी	मर्यादा-पालक, परिवार रक्षक
झूली बाई	झूली बाई	संघर्षशील, सहअस्तित्व में आस्थावान

[स्रोत: नवप्रदेश डेस्क, (2023)]

यह तालिका स्पष्ट करती है कि स्त्री दृष्टि लोक परंपरा में केवल कथन की विधा न होकर मूल्यों के पुनर्पाठ की शक्ति है। इन उदाहरणों में स्त्रियाँ भील नायकों को

किसी सामंती संरचना में देखने के बजाय, एक ऐसे साथी के रूप में पहचानती हैं जो परिवार, संस्कृति और अस्तित्व की रक्षा करता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो स्त्री चेतना ने भील नायकत्व को भावनात्मक एवं सामाजिक आयामों में गहराई दी है, जो उन्हें युद्ध नायक के साथ-साथ संवेदनशील नेतृत्व का आदर्श बनाता है (शरण, भरण, 2022)।

VI. भील नायकों की छवियों में पर्यावरणीय चेतना और भू-आधारित संघर्ष

राजस्थानी लोकगाथाओं में वर्णित भील नायकों की छवियाँ केवल शौर्य या प्रतिरोध की कहानियाँ नहीं है। क्योंकि उनमें प्रकृति के प्रति एक गहन सामूहिक चेतना भी अभिव्यक्त होती है। यह चेतना महज़ प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तक सीमित नहीं रहती, वह भील समाज की जीवनशैली, धार्मिक विश्वास और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से जुड़ी होती है (सुशील कुमार, 2021)। जब कोई भील नायक जलस्रोत की रक्षा करता है या जंगल के पेड़ों को कटने से रोकता है, तो वह किसी आर्थिक लाभ के लिए करने की बजाय अपनी मातृभूमि को जीवित मानकर उसकी रक्षा करता है। उनके लिए नदी, पहाड़ और वन देवी-देवताओं की तरह पूजनीय हैं। इन गाथाओं में प्रकृति को उपयोगिता की दृष्टि से नहीं, आत्मीयता और उत्तरदायित्व की दृष्टि से देखा गया है। उदाहरण के लिए, कई गाथाओं में भील नायकों का प्रकृति से संवाद, उनकी पशु-पक्षियों के साथ सह-अस्तित्व की भावना को दर्शाता है (श्रीराम शर्मा, 1930)। यह संबंध एकतरफा नहीं, परस्पर संरक्षण पर आधारित है, जहाँ नायक धरती की रक्षा करता है और धरती उसे साहस प्रदान करती है।

भील नायकों के संघर्षों को यदि केवल सत्ता या राज्य-व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिरोध के रूप में देखा जाए, तो यह एक अधूरी समझ होगी। वे जिस भूमि पर रहते थे, वह केवल उनके जीवनयापन का आधार नहीं थी। क्योंकि वह उनके इतिहास, पुरखों और सांस्कृतिक स्मृतियों का जीवंत स्थल थी (नवप्रदेश डेस्क, 2023)। जब कोई भील नायक अपनी पहाड़ी से नीचे उतरकर किसी प्रशासनिक व्यवस्था का विरोध करता है, तो उसका उद्देश्य राज्य की सत्ता प्राप्त करना न होकर उस जमीन की रक्षा करना होता है जहाँ उसकी पीढ़ियाँ जन्मीं और बसीं। यह भू-आधारित चेतना किसी विधिक दस्तावेज़ पर आधारित होने की बजाय स्मृति, श्रम और सामूहिक परंपरा पर आधारित होती है। 'झमकली' जैसे पात्रों की गाथाओं में इस भावना की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जहाँ भूमि की रक्षा को मातृ-धर्म माना गया है (हेमलता गमेती, 2024)। इस प्रकार, भील नायकों की छवियों में भू-संघर्ष कोई राजनीतिक क्रांति बनने की बजाय सामाजिक उत्तरदायित्व और जीवंतता का संघर्ष बन जाता है, जो उन्हें आधुनिक पर्यावरण चिंताओं से भी जोड़ता है।

राजस्थानी लोक परंपराओं में वर्णित भील नायक उस समय की पारिस्थितिकी के संरक्षक प्रतीत होते हैं, जब 'संरक्षण' शब्द स्वयं लोकभाषा का हिस्सा नहीं था। वे जंगलों के भीतर रहने वाले मात्र लोग ही नहीं साथ में उन जंगलों के नैतिक संरक्षक थे। उनकी चेतना में प्रकृति का क्षरण एक सांस्कृतिक संकट के रूप में आता है, जिसे वे केवल बाहरी आक्रमण से नहीं, भीतर से भी पहचानते हैं (कृष्ण मूर्ति त्रिपाठी, 2023)। कई प्रसंगों में भील नायक अपने ही समाज में प्राकृतिक लापरवाही का विरोध करते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उनकी दृष्टि केवल विरोध की नहीं, निर्माण की थी। वे केवल वह नहीं थे जो भूमि की रक्षा करते थे। क्योंकि वह भी थे जो भूमि की मर्यादा को परिभाषित करते थे। उनकी यह भूमिका आज के सन्दर्भ में भी प्रासंगिक है, जब पर्यावरणीय संकट वैश्विक विमर्श का भाग बन चुका है। इस संदर्भ में भील नायक महज़

ऐतिहासिक पात्र नहीं, पर्यावरणीय विवेक और सांस्कृतिक चेतना के प्रतिनिधि बनकर सामने आते हैं (हेमलता गमेती, 2024)।

VII. भील नायकों की ऐतिहासिकता का पुनर्पाठ: समकालीन परिप्रेक्ष्य

राजस्थानी ख्यातों और लोकगाथाओं में वर्णित भील नायकों की छवियाँ केवल अतीत की स्मृति नहीं, साथ में वर्तमान में पुनर्पाठ की माँग करने वाले विमर्श हैं। समकालीन भारत में जब जनजातीय समाज अपने सांस्कृतिक अधिकारों, भूमि स्वायत्तता और ऐतिहासिक मान्यता की पुनर्प्राप्ति के लिए संघर्षरत है (अमितेश कुमार, 2018), तब इन नायकों की ऐतिहासिकता को वर्तमान संदर्भ में देखना आवश्यक हो जाता है। आधुनिक सामाजिक आंदोलनों में 'झमकली' और 'कोजिया' जैसे नायकों का उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि वे केवल ऐतिहासिक पात्र नहीं, साथ में सामाजिक चेतना के आधार बनते जा रहे हैं। आज़ादी के बाद आदिवासी क्षेत्रों में बढ़ते औद्योगीकरण और खनन गतिविधियों ने जिस प्रकार से परंपरागत भू-संरचनाओं को चुनौती दी है, उसी क्रम में यह बहस तेज़ हुई है कि भील नायकों को इतिहास के केंद्र में कैसे पुनर्स्थापित किया जाए (हेमलता गमेती, 2024)। यह पुनर्पाठ इतिहास को केवल 'राज-प्रेरित' दृष्टिकोण से हटाकर 'जन-आधारित' संदर्भों में पुनर्गठित करने का प्रयास है। इन प्रयासों का उद्देश्य ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अधिक समावेशी और न्यायपूर्ण बनाना है।

भील नायकों की ऐतिहासिक उपस्थिति की उपेक्षा शैक्षणिक पाठ्यक्रमों और सरकारी अभिलेखों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। वर्तमान समय में जब जनजातीय समुदाय अपने ऐतिहासिक अस्तित्व की माँग को लेकर मुखर हैं (RajRAS, 2019)। तब यह आवश्यक हो जाता है कि इतिहास लेखन में उनके योगदान को वस्तुनिष्ठ रूप से पुनर्संयोजित किया जाए। ख्यातों में जो छवियाँ सीमित थीं, वे लोक परंपरा में व्यापक और संघर्षशील बनकर उभरी हैं, और यही लोक दृष्टि आज भील समाज के नेतृत्व की प्रेरणा बन रही है। यह तथ्य उपेक्षा का सूचक है कि विश्वविद्यालयों के इतिहास विभागों में आज भी भील नायकों का समावेश केवल राणा प्रताप के सहायक के रूप में होता है, स्वतंत्र नेतृत्व के रूप में नहीं (कृष्ण मूर्ति त्रिपाठी, 2023)। यह विडंबना समकालीन संदर्भ में और अधिक चुनौतीपूर्ण हो जाती है जब भील समुदायों के युवा अपनी पहचान को शैक्षणिक माध्यमों से स्थापित करने की ओर अग्रसर हैं। ऐतिहासिकता का यह पुनर्पाठ केवल वैचारिक निर्माण नहीं, साथ में सामाजिक सशक्तिकरण की दिशा में ठोस कदम है।

ऐतिहासिक विमर्शों में भील नायकों की अनुपस्थिति या सीमित उपस्थिति एक गहन आंकड़ा-आधारित समीक्षा की माँग करती है (Sahityasetu Editorial Team, 2013)। नीचे प्रस्तुत तालिका राजस्थान के तीन प्रमुख विश्वविद्यालयों के स्नातक इतिहास पाठ्यक्रमों में भील नायकों की उपस्थिति पर आधारित है। यह तालिका दर्शाती है कि भील नायकों की ऐतिहासिकता को अकादमिक स्वीकृति आज भी न्यून स्तर पर प्राप्त है, जिससे सामाजिक पुनर्पाठ की आवश्यकता और स्पष्ट होती है –

तालिका 03: राजस्थान के प्रमुख विश्वविद्यालयों में स्नातक इतिहास पाठ्यक्रम में भील नायकों की उपस्थिति (2023-24)

विश्वविद्यालय	पाठ्यक्रमों की संख्या	भील नायकों का उल्लेख	प्रतिशत (%)
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	12	2	16.6%

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर	10	3	30%
महाराजा गंगा सिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर	09	0	0%

[स्रोत: भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, (2022)]

यह आँकड़ा स्पष्ट करता है कि समकालीन अकादमिक संस्थानों में भील नायकों की ऐतिहासिक उपस्थिति नगण्य है, जबकि लोक स्मृति में वे प्रमुख स्थान रखते हैं। इन आंकड़ों से यह भी सिद्ध होता है कि औपचारिक इतिहास लेखन और जनपक्षीय स्मृति में गहरा अंतर है (नवप्रदेश डेस्क, 2023) यदि नीति निर्माण और शैक्षणिक सुधार में इस विसंगति को संबोधित नहीं किया गया तो जनजातीय इतिहास और समाज के बीच एक गहरी खाई बनी रहेगी। इसलिए ऐतिहासिक पुनर्पाठ के समकालीन परिप्रेक्ष्य का कार्य केवल शोधन नहीं, सामाजिक पुनर्रचना का माध्यम भी है।

VIII. निष्कर्ष और सुझाव

राजस्थानी ख्यातों और लोकगाथाओं में दर्ज भील नायकों की छवियों को अगर पूरे अवलोकन में देखें, तो यह बात धीरे-धीरे साफ़ होती है कि इन नायकों की भूमिका किसी सहायक या पीछे छूटे समुदाय की न होकर अपने समय की सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक मूल्यों के मजबूत आधार रहे हैं। ख्यातों में जहाँ उन्हें सीमित तौर पर दिखाया गया है, वहीं लोक गाथाएँ उन्हें पूरी गरिमा, सम्मान और भावनात्मक गहराई के साथ सामने लाती हैं। स्त्रियों की दृष्टि से देखे गए वर्णन हों या प्रकृति से उनका गहरा जुड़ाव – हर पहलू यह बताता है कि भील नायक सिर्फ तलवार चलाने वाले योद्धा नहीं थे, वे अपने समाज, अपने जंगल और अपनी ज़मीन के जिम्मेदार संरक्षक भी थे। विश्लेषण में यह भी सामने आया कि इतिहास लेखन की औपचारिक विधियों ने इन्हें जितना पीछे किया, लोक परंपराओं ने उतना ही इन्हें संभाला और सहेजा। इसी अंतर को समझना और उससे संवाद करना इस पूरे अध्ययन का सबसे ज़रूरी पहलू बनकर उभरा।

चिंतन से जो बातें सामने आई हैं, उनके आधार पर यह जरूरी लगता है कि अब भील नायकों की भूमिका को इतिहास और समाजशास्त्र दोनों में एक नया स्थान दिया जाए। चूंकि ये नायक किसी दूसरे के सहायक भर न होकर अपने समाज के असली प्रतिनिधि थे। इसलिए ज़रूरी है कि स्कूल-कॉलेजों की किताबों में इन्हें अलग पहचान मिले और उनके योगदान को विस्तार से पढ़ाया जाए। लोकगाथाओं, गीतों और स्मृतियों को भी अध्ययन का हिस्सा बनाया जाए ताकि इतिहास सिर्फ राजाओं और युद्धों की कहानी न रह जाए और उसमें आम जन के अनुभव और संघर्ष भी उसमें दिखें। यह भी ज़रूरी है कि भील समाज के लोग खुद अपनी कहानियों को दर्ज करें और उन्हें आगे की पीढ़ियों तक पहुँचाएँ। जब तक इन नायकों को हमारी मुख्यधारा की सोच और पढ़ाई में जगह नहीं मिलेगी, तब तक इतिहास अधूरा रहेगा और समाज के एक बड़े हिस्से की आवाज़ अनसुनी रह जाएगी।

संदर्भ सूची

[1] शर्मा, श्रीराम. (1930). “महाराणा प्रताप”. स्मिथ एल्डर एंड कम्पनी.

[2] परदेसी-बघेल, नर सिंह. (2021). “महाराणा प्रताप: समग्र मूल्यांकन”. आर्यावर्त संस्कृति संस्थान. ISBN: 9789392235085.

[3] कुमार, सुशील. (2021). “हल्दीघाटी का योद्धा”. पवन अग्रवाल पब्लिकेशन. ISBN: 9788193295625.

[4] बरण्डा, धरमपाल. (2022). “महाराणा प्रताप कालीन जनजातीय संस्कृति, कला एवं साहित्य”. Journal of Emerging Technologies and Innovative Research, 9(5). INFLIBNET.

[5] परिहार, सावित्री सिंह, एवं चौबीसा, ज्योति. (2025). “महाराणा प्रताप का गौरवशाली इतिहास”. International Journal of Political Science and Governance, 7(4). INFLIBNET

[6] मीणा, कपिल कुमार. (2025). “महाराणा प्रताप की ऐतिहासिक स्वतंत्रता संग्राम गाथा”. International Journal of Interdisciplinary Research in Computer Science and Technology, 11(2). International Research Journal Platform.

[7] फ़ज़ल, अबुल. (1597). “अकबरनामा – प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग”. कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर.

[8] ओझा, गोपीनाथ शर्मा. (1927). “राजपूताना का इतिहास”. वैदिक पुस्तकालय, अजमेर.

[9] ओझा, गोपीनाथ शर्मा. (1928). “वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप”. राजस्थानी प्रज्ञागार, जोधपुर.

[10] अलबदायुनी, अब्दुल कादिर. (1593). “मुन्तखब-उत-तवारीख (दूसरा भाग)”. इदरार-ए-अदबियात-ए-दिल्ली. प्लेटफॉर्म: National Digital Library of India.

वेबसाइट आधारित संदर्भ :

[11] राजस्थान ज्ञान. (2020). “राजस्थान की जनजातियां - मीणा”. राजस्थान ज्ञान. Rajasthan Gyan. https://www.rajasthangyan.com/rajasthan?nid=42google_vignette

[12] भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद. (2022). “वार्षिक रिपोर्ट (प्रतिवेदन) 2021-2022”. Indian Council of Historical Research. http://ichr.ac.in/upload/uploadadfiles/Annual_Report_2021-2022.pdf

[13] त्रिपाठी, कृष्ण मूर्ति. (2023). “भारत के इतिहास में जनजातीय समाज का अद्वितीय योगदान”. Pathey Kan. https://patheykan.com

[14] गमेती, हेमलता. (2024). “दक्षिण राजस्थान के वनवासी भील जनजाति का जीवन (उदयपुर संदर्भ में)”. International Refereed Journal of Multidisciplinary Studies and Humanities, 6(5). https://www.ijfmr.com/research-paper.php?id=29588

[15] नवप्रदेश डेस्क. (2023, November). “जनजातीय समाज का गौरवशाली इतिहास”. Navpradesh. https://navpradesh.com/glorious-history-of-tribal-society/

[16] शरण, भरण. (2022). “महाराणा प्रताप कालीन जनजातीय संस्कृति, कला एवं साहित्य”. Journal of Emerging Technologies and Innovative Research, 9(5), 772-775. https://www.jetir.org/papers/JETIR2205794.pdf

[17] कुमार, अमितेश. (2018). “मेवाड़ उदयपुर क्षेत्र में मंदिर-निर्माण गतिविधियाँ”. Indira Gandhi National Centre for the Arts. https://ignca.gov.in/coilnet/rj154.htm

[18] RajRAS. (2019). "राजस्थान में जनजातीय समुदाय: भील, मीणा और गरासिया - समस्याएं और कल्याण". RajRAS. https://rajras.in/hi/ras/mains/paper-1/sociology/tribal-community-of-rajasthan/

[19] Abu'l-Fazl. (1998). "The Ā'īn-i Akbarī". H. Bloch Mann, Trans., Vol.1. Bharat Discovery. https://bharatdiscovery.org/india/

[20] Sahityasetu Editorial Team. (2013, March-April). "ख्यात साहित्य और इतिहास: एक विवेचन". Sahityasetu: A Literary E-Journal, 3(2). Sahityasetu. https://www.sahityasetu.co.in/issue14/vikram.php